“खेती न किसान को, भिखारी को न भीख,

[redacted]

एम ए 1समेस्टर, हिन्दी,2 प्रश्नपत्र, यूनिट4

तुलसीदास ,

दिनांक-19-11-2020

उसका सम्बन्ध चाहे शास्त्र से हो अथवा लोक से। कबीर थोथे योग को भी अस्वीकार कर देते हैं, भस्म-भभूत, समाधि और साधनाजन्य चमत्कारों से सदैव लोक को सावधान करते हैं, मनुष्य सत्य ही उनकी दृष्टि में सबसे बड़ा मूल्य है। तुलसी इसी सत्य से परिचालित होने के कारण विशेषाधिकार प्राप्त पुरोहित वर्ग को चुनौती देते हैं। उसके धार्मिक मनमानेपन, बड़बोलेपन, धूर्तता और दंभ की आलोचना करते हुए उन्होंने लिखा था - 'मारग सोई जाकहुं जो भावा, पंडित सोई जो गाल बजावा।' उन्होंने वाह्याचार की तुलना में नाम सुमिरन को महत्त्व दिया। परहित को सबसे बड़ा 'धर्म' और पर पीड़ा को सबसे बड़ी 'अधमाई' कहते हैं, किन्तु जब वे भक्ति आन्दोलन की उदात्त चेतना से अलग अपनी वंश परम्परा एवं संस्कारों से जुड़ जाते हैं तो उस व्यवस्था की हिमायत करने लगते हैं, जो शास्त्र सम्मत है, वेद-विहित है लेकिन तुलसी समझौतावादी नहीं हैं, यथास्थितिवादी नहीं है, रामचरितमानस में कलियुग के वर्णन में धर्म की ध्वजा उठाने वाले छद्म साधु-संतों के चेहरे को जहाँ उन्होंने बेनकाब किया है -

असुभ वेष भूषन धरे, भच्छाभच्छ जे खाहिं।
तेइजोगी, तेइ सिद्ध पर , पूज्य ते कलिजुग माहिं।।

वहीं उन्होंने अपने समय की राजसत्ता को भी चुनौती दी - 'वेद धर्म दूरित गये, भूमिचोर भूप भए' और 'लोक कल्याण को मुख्य राजधर्म, राजनीति का अनिवार्य पक्ष घोषित किया -

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी।
सो नृप अवसि नरक अधिकारी।।

तुलसी ने जनता की दरिद्रता पर क्षुब्ध होकर समय एवं समाज की निर्माणक एवं निर्णायक शक्तियों को बेनकाब किया, अकाल पर द्रवित होते हुए लिखा, लोगों की भूख-प्यास को अपनी कविता का न केवल विषय बनाया, बल्कि उनकी दृष्टि में यही भक्ति है, मनुष सत्य है। अकाल और दरिद्रता पर लिखते हुए गोस्वामी जी उस लोक की सामान्य भाव भूमि पर पहुँच जाते हैं, जहाँ उन्हें रावण दरिद्रता के प्रतीक के रूप में दिखाई देता है और जनता की मुक्ति के लिए राम का आह्वान करते हैं -

करते हुए, उन्हें निरर्थक घोषित करते हुए मानव हृदय के एकात्म तथा मानव मात्र की समानता को प्रमुख लोक धर्म के रूप में स्वीकार किया गया। धार्मिक शुद्धतावाद, कट्टरतावाद और पाखण्ड से निर्भयतापूर्वक एवं आत्मगौरव बोध के साथ जितना संत साहित्य ने लोहा लिया, दूसरे ने नहीं। यह सूरा का संग्राम था और कबीर जैसे भक्त बाज़ार में खड़े होकर गुहार लगा रहे थे ''कायर भागे पीठ दे, सूरा करे संग्राम' कबीर को हिन्दू-मुसलमान दोनों धर्म के ठेकेदारों का विरोध झेलना पड़ा। उन्होंने हिन्दू पण्डितों पर व्यंग्य किया 'पाथर पूजे हरि मिले, तो मैं पुजूं पहाड़' उन्होंने संन्यास आदि का विरोध किया तथा भौतिक जीवन पर बल दिया, लोक जीवन की सार्थकता की तलाश में भाग्यवाद, नियतिवाद को भी चुनौती दी, संन्यास का विरोध किया 'मन न रंगाये रंगाये जोगी कपड़ा' कहना न होगा कि इसी भाग्यवाद में उत्पीड़ित लोक के प्रतिरोध को सन्न किया था, नियतिवाद ने आकर्मण्य, संसार वियुश। इसीलिए वेद शास्त्र, कुरान, पंडित, मुल्ला, पांडे-काजी को ही नहीं फटकारते हैं। वे लोक को भी समान आक्रोश के साथ फटकारते हैं। साधारण जन में प्रचलित सामाजिक, धार्मिक अंधविश्वास, तंत्र-मंत्र, जादू-टोना उनकी दृष्टि में लोकाचार है, जो मनुष्य को बाँधता है -

लोका तुम हो मति के भोरा।
जो कासी तन तजे कबीरा रामहिं कौन निहोरा।

इसीलिए कबीर लोक में प्रचलित धार्मिक रूढ़िवाद के साथ-साथ उसके मूल स्त्रोतों पर भी आक्रमण करते हैं, जीवन के अनुभव और उस अनुभव से पाये सत्य को शास्त्र से भी अधिक प्रामाणिक मानते हैं - 'तू कहता कागद की लेखी, मैं कहता आँखिन की देखी।' कबीर जिस लोकानुभव की ताकत एवं 'अनभै सांचा' को लेकर शास्त्र के सामने खड़े होते हैं, उसी के सहारे वे लोकभ्रम के भय का भी सामना करते हैं। वे लोक के व्यापक अनुभव से शास्त्रीय ज्ञान की सामाजिक भूमिका भी पहचाने हैं, इसीलिए वेद और कुरान को कभी झूठ का बाना, कभी प्रपञ्च और कभी लोक को भ्रमित करने वाले तत्त्व के रूप में देखते हैं - 'लोका जानि न भूलौ भाई।' सन्देह नहीं कि कबीर ने जिस लोक धर्म की अलख जगायी उसमें अन्याय, अनीति, भेदभाव, रूढ़िवाद, धार्मिक वितंडावाद सबका विरोध है,

प्रकृति के अनुरूप तुलसी के व्यक्तित्व में सनातनता और सृजनात्मक का संघर्ष है, टकराहट है उनकी सनातनता कहती है 'होइहिं सोइ जो राम रचि राखा' उनकी सृजनात्मकता सावधान करती है 'करम प्रधान विश्व करि राखा। जो जस करई सो तस फल चाखा।' किन्तु यह भी सच है कि अपने इस संघर्ष से उन्होंने भक्ति की न केवल एक नयी व्याख्या की, बल्कि उसे उन वर्णों, वर्गों, परिवारों और समुदायों में भी प्रवेश दिला सके, जिनमें संत एवं सूफी कवि प्रवेश ही नहीं दिला पाये थे। तुलसी के राम आम जनता के लोक मानस के जय सियाराम हैं और तुलसी की राम भक्ति का अर्थ है, 'तुलसी ममता राम सों समता सब संसार' और इसका लक्ष्य है 'परहित सरिस धर्म नहीं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।' यह महज तुकबन्दी नहीं है, बल्कि तुलसी की सृजनात्मक नैतिकता है, मनुष्य की गरिमा का उद्घोष है, उसी मनुष्य की गरिमा का जो कबीर, जायसी, सूर, मीरा में है। शम्भुनाथ जी से सहमत होते हुए कहा जा सकता है, ''तुलसी कट्टरवादी न थे। उन्होंने धर्म के 'फंडामेंटल्स' को चुना, पर उनका उद्देश्य धर्म के उन बुनियादी तत्त्वों का इस्तेमाल किसी दूसरे धर्म या अपने धर्म के किसी दूसरे वर्ण के खिलाफ करना नहीं था। इसीलिए तुलसी की भक्ति में वर्ण व्यवस्था के कीटाणुओं के बावजूद एक उच्चता, मिश्रणशीलता और गतिशीलता थी। उसमें पंडित-पुरोहित वर्ग को चिढ़ाने के लिए ढेर सारी चीजें थीं। उसमें ऐसा बहुत कुछ था, जो मनुष्य को आत्मविश्वास देता था और लोभ से विमुख रहने की अन्तःशक्ति देता था।'' (धर्म का दुखांत, पृष्ठ 102)। परन्तु तुलसी की भक्ति मनुष्य को आत्मग्लानि से मुक्त कर गरिमा का अहसास कराती थी -

हम चाकर रघुबीर के पटौ लिखो दरबार
तुलसी अब क्या होहिंगे नर के मंसबदार।

भक्ति आन्दोलन में मनुष्य की महत्ता और सार्वभौम एकता का सार ही प्रबल रूप में दिखाई देता है। नानक, दादू, कबीर, रैदास, नामदेव जैसे संतों का योगदान लोक की एक विशिष्ट उपलब्धि है, सामाजिक, सांस्कृतिक जागरण का एक नवीन प्रस्थान है। धर्म एवं भक्ति के क्षेत्र में सही, पहली बार सामाजिक जीवन के बीच वर्ग, वर्ण, जाति, नस्ल, धर्म, सम्प्रदाय के भेदों तथा बंधनों को अस्वीका

विद्रोह करके बाहर निकल चुके थे, जबकि भक्तों ने भीतर रहकर सुधार का उद्घोष किया। भक्ति आन्दोलन ने मानव के दिलों से भेद मिटाना चाहा, जो धर्म पर विशेषाधिकार प्राप्त पुरोहितों, आचार्यों के आधिपत्य को चुनौती थी।" (धर्म का दुखांत, पृष्ठ 91)

अतएव यदि हजारी प्रसाद द्विवेदी भक्ति युग का मुख्य अन्तर्विरोध "लोक और शास्त्र का द्वन्द्व" स्वीकार करते हैं, तो गलत नहीं है। डॉ0 राम विलास शर्मा भी भक्ति आन्दोलन को लोकजागरण कहकर रेखांकित करते हैं तो उनके मन में भी यही भाव है। उनका कथन है, "किसी समय रहस्यवाद ने साहित्य और समाज में बड़ी क्रान्तिकारी भूमिका पूरी की थी। मनुष्य में ब्रह्म दर्शन करके कवियों ने मनुष्य मात्र की समानता की घोषणा की थी। धर्म, संप्रदाय, वर्ण, मत-मतांतर आदि के भेदों का विरोध करके मनुष्यता की प्रतिष्ठा की थी। पुरोहित और देववाणी के दर्प से आतंकित न होकर उसने लोक भाषाओं की साहित्य में प्रतिष्ठा की थी।" (सन्दर्भ भक्ति आन्दोलन और भक्ति काव्य' - डॉ0 शिव कुमार मिश्र)

लोक की व्याख्या, अवधारणा एवं स्वरूप एवं चेतना को लेकर भक्तिकालीन कवियों में मतैक्य नहीं है। एक तरफ निर्गुण कवि हैं तो दूसरी तरफ सगुण कवि। इतना ही नहीं कबीर, जायसी, सूर, तुलसी और मीरा के लोक धर्म का रूप एवं संवेदना एक जैसा नहीं है। यह इन कवियों की विश्व दृष्टि से संचालित है और इनकी विश्व दृष्टि अपने समय, समाज, परम्परा से परिचालित है। सामाजिक अन्याय के विरोध में और मानवीय न्याय के पक्ष में, निर्गुण संतों के स्वर ज्यादा मुखर हैं और उनमें अधिक ऊष्मा है, जबकि सगुण भक्ति की कविता विशेषतः तुलसी में परम्परागत सामाजिक संरचना का प्रायः समर्थन है और कहीं-कहीं संशोधन का स्वर भी है। सामाजिक विषमता ने तुलसी को भी मथा था। उन्होंने कहा 'सबते कठिन जाति अपमाना' और 'नहिं दरिद्र सम दुख जग माही'। एक महत्त्वपूर्ण अवसर पर वह सामाजिक व्यवस्था को चुनौती देते हुए अपना अक्खड़पन भी दिखाते हैं। वह अपने को जातिविहीन घोषित कर देते हैं - 'मांग के खैबो, मसीत को सोइबो लेबे को एक न देबे को दोऊ'। कहना न होगा कि भारतीय

भक्ति साहित्य एवं लोक चेतना

(लोका! तुम हो मति के भोरा)

शास्त्र और लोक समानान्तर कभी मिलते हैं, कभी टकराते चलते रहे, कभी एक दूसरे से प्रेरित होते हैं, कभी-कभी अपना अलग-अलग रास्ता बना लेते हैं। हिन्दी साहित्य के इतिहास पर दृष्टि डालें तो यह स्थिति आदिकालीन साहित्य में भी है, भक्ति काल में भी और किञ्चित भिन्न परिवेश में आधुनिक काल में भी। लोक सम्पृक्ति, लोक-संवेदना हिन्दी भाषा एवं साहित्य की जातीय चेतना है। कबीर ने भाषा की लोकाभिमुखता को रेखांकित करते हुए कहा था 'कविए संस्कृत कूप जल, भाषा बहता नीर' तुलसी ने भी लिखा "भाषा मनिति मोर मनि थोरी" या 'स्वांतः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा, भाषा निबद्ध मति मंजुल मातनोति" जायसी ने अपना लक्ष्य घोषित करते हुए लिखा "आदि अंत जसि कथ्या अहै, लिखि भाषा चौपाई कहै।" इसमें अत्युक्ति नहीं कि लोक चेतना भाषा एवं साहित्य की राग एवं शक्ति चेतना है, उसका शिल्प है,लोक पक्षधरता उसका स्वभाव है, उसकी प्रेरणा है, उसकी बोधशक्ति है। इसी भावबोध के कारण बौद्ध धर्म, जैन धर्म, लोकायतों के अलावा आगे चलकर सिद्धों और नाथों ने चली आ रही लोक विरोधी वेद शास्त्र विहित मान्यताओं, रूढ़ियों, आचार-विचार - व्यवहारों को चुनौती दी। यह परम्परा एवं चेतना भक्ति आन्दोलन में भी है। शम्भुनाथ जी ने लिखा है "वेदान्त और बौद्ध धर्म के बाद भक्ति आन्दोलन भारतीय सामाजिक चेतना में तीसरा क्रान्तिकारी नवोन्मेष है। वह धर्म और मानवता का नया संकल्प बनकर आया। सम्पूर्ण भक्ति आन्दोलन ही, जिसकी शुरुआत दक्षिण से हुई, धर्म और मानवता की एक नयी चेतना है। बौद्ध धर्मावलम्बी सनातन हिन्दू व्यवस्था से